

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में
दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला संख्या. 12321/2021

=====

मनोज कुमार राम, पुत्र-स्वर्गीय महंथ राम, निवासी-गाँव-हरपुर, थाना-रघुनाथपुर, जिला-
सिवान (बिहार)

..... याचिकाकर्ता/ओं

बनाम

1. बिहार राज्य, प्रधान सचिव, गृह विभाग, बिहार सरकार, पटना के माध्यम से।
2. पुलिस महानिदेशक, बिहार सरकार, पटना।
3. अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक (कानून और व्यवस्था), बिहार सरकार, पटना।
4. पुलिस महानिरीक्षक (बजट, अपील और कल्याण), बिहार सरकार, पटना।
5. पुलिस महानिरीक्षक मुजफ्फरपुर क्षेत्र, मुजफ्फरपुर।
6. पुलिस उप महानिरीक्षक सारण रेंज, सारण, छापरा।
7. पुलिस अधीक्षक सारण, छापरा।
8. पुलिस अधीक्षक जिला-गोपालगंज।
9. पूछताछ अधिकारी-सह-पुलिस उप अधीक्षक मुख्यालय, सारण, (छपरा)।

..... उत्तरदाता/ओं

=====

उपस्थिति:

याचिकाकर्ता/ओं की ओर से : श्री संजय कुमार गिरि, अधिवक्ता

श्री मृत्युंजय हर्ष, अधिवक्ता

राज्य की ओर से : श्री मो. नदीम सिराज, अधिवक्ता जी.पी. 5

श्री धुरेंद्र कुमार, सहायक अधिवक्ता जी.ए.-5

=====

सेवा कानून---भारत का संविधान---अनुच्छेद 226, 227----बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 2005----नियम 16, 17(2), 17(5)(सी) एवं 18----सरकारी सेवक के विरुद्ध विभागीय जांच---उस आदेश को रद्द करने के लिए रिट याचिका जिसके तहत विभागीय जांच के आधार पर याचिकाकर्ता को भ्रष्टाचार के आरोप में पुलिस अवर निरीक्षक के पद से बर्खास्तगी का दंड दिया गया है।

निष्कर्ष: सरकारी कर्मचारी के खिलाफ की गई विभागीय जांच को आकस्मिक अभ्यास नहीं माना जा सकता है और इसे बंद दिमाग से नहीं किया जा सकता है---जांच अधिकारी को पूरी तरह से निष्पक्ष होना चाहिए और प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन किया जाना चाहिए ताकि न केवल यह सुनिश्चित हो सके कि न्याय किया गया है बल्कि यह स्पष्ट रूप से देखा भी गया है कि न्याय किया गया है----वर्तमान मामले में, प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को देरी से नियुक्त किया गया था और, इसलिए, प्रतिवादी अधिकारियों ने सीसीए नियम, 2005 के नियम 17(5)(सी) के तहत शामिल किए गए नुस्खे और वैधानिक नियम की आवश्यक आवश्यकता का उल्लंघन किया है--- संचालन अधिकारी की रिपोर्ट में विभाग की ओर से पेश किए गए गवाहों के बयान और याचिकाकर्ता के बचाव के लिखित बयान का वर्णन किया गया है, लेकिन इस बात पर कोई विचार-विमर्श और चर्चा नहीं है कि याचिकाकर्ता का बचाव स्वीकार करने योग्य क्यों नहीं है--- गवाहों के बयान और लिखित बचाव बयान को दोहराना ही जांच अधिकारी को उसके महत्वपूर्ण कर्तव्य का निर्वहन करने से मुक्त करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है, जो एक स्वतंत्र अर्द्ध-न्यायिक प्राधिकरण के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य है---यदि अपराधी अपनी अनुपस्थिति के कारण गवाहों की जिरह का लाभ नहीं प्राप्त कर पाता है, यदि यह पाया जाता है कि उसकी अनुपस्थिति न्यायोचित आधार पर है, तो ऐसी परिस्थितियों में, जांच अधिकारी अपराधी द्वारा मांगी गई अगली तारीख पर जिरह के लिए अवसर प्रदान करने के लिए उदार होना चाहिए-----अवैध

परितोषण की मांग के सबूत के अभाव में, अपीलकर्ता/आरोपी से दागी करेंसी नोटों की बरामदगी मात्र से अपराध का होना स्थापित नहीं होता है, इसलिए इस मामले में, विभाग पर यह साबित करने का दायित्व था कि संभावनाओं की अधिकता के मानदंड पर भी कि याचिकाकर्ता ने स्वेच्छा से यह जानते हुए भी धन स्वीकार किया कि यह रिश्तत है---आक्षेपित आदेश के साथ-साथ अपीलीय आदेश तथा सभी परिणामी आदेश अपास्त किए जाते हैं---प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को सेवा से बाहर रहने की अवधि के लिए आधे वेतन में वृद्धि करके सेवा की निरंतरता के साथ बहाल करने का निर्देश दिया। (पैरा- 19, 21-26, 28)

विभागीय जांच के संबंध में अनुच्छेद 226 का दायरा- न्यायिक समीक्षा का दायरा निर्णय लेने की प्रक्रिया में कमी तक सीमित है, निर्णय तक नहीं- इस बात के लिए सावधानी बरती गई है कि न्यायालय प्रशासक द्वारा किए गए विकल्प की शुद्धता पर विचार नहीं करेगा तथा न्यायालय को प्रशासक के निर्णय के स्थान पर अपना निर्णय नहीं देना चाहिए- हस्तक्षेप को उचित ठहराने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष न्यायिक जांच का सामना कर रहे न्यायाधिकरण के आदेश में सामान्य से अधिक त्रुटिपूर्णता का स्तर होना चाहिए। (पैरा 16, 17)

एआईआर 2012 एससी 2250, [(2016) 9 एससीसी 20, 2017(4) पीएलजेआर 195 (2010) (2) एससीसी 772, (2010) 9 एससीसी 496भरोसा किया गया। (1948) 1 केबी 223, (2015) 2 एससीसी 610, (2024) 6 एससीसी 418, एआईआर 1963 एससी 1723, (1975) 2 एससीसी 557, (1996) 3 एससीसी 364, 345 यूएस 206 (1953) (जैक्सन जे), (2013) 10 एससीसी 324संदर्भित।

=====

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आदेश

=====

समक्ष: माननीय न्यायमूर्ति श्री हरीश कुमार

सी ए वी निर्णय

दिनांक: 20-03-2025

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार गिरि और श्री मो. नादिम सेराज, जो लंबे समय तक राज्य के विद्वान अधिवक्ता भी रहे,को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने पुलिस उप महानिरीक्षक, सारण रेंज, छपरा (प्रतिवादी संख्या 6) द्वारा पारित ज्ञापन संख्या 3340 दिनांक 17.11.2018 को रद्द करने की मांग करते हुए इस न्यायालय के विशेषाधिकार रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान किया है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को पुलिस उपनिरीक्षक के पद से बर्खास्तगी की सजा दी गई है। ज्ञापन संख्या 4989 दिनांक 24.11.2018 के साथ-साथ ज्ञापन संख्या 2488 दिनांक 29.11.2018 में निहित परिणामी आदेशों को भी वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है। याचिकाकर्ता प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 16.02.2021 के आदेश से भी व्यथित है, जिसके तहत बर्खास्तगी के आदेश के खिलाफ दायर अपील भी दिनांक 16.02.2021 के आदेश के साथ-साथ मेमो संख्या 1498 दिनांक 13.03.2021 और मेमो संख्या 595 दिनांक 23.03.2021 के तहत जारी परिणामी आदेशों के तहत खारिज कर दी गई।

3. अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों से लिए गए वर्तमान सूची के निर्णय के लिए आवश्यक प्रासंगिक तथ्य, संक्षेप में, इस प्रकार हैं:

(i) याचिकाकर्ता को विधिवत 18.02.2009 को पुलिस उप निरीक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था। जबकि याचिकाकर्ता सारण जिले के भीतर जलालपुर पुलिस स्टेशन में तैनात था, उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत दंडनीय अपराधों

के लिए दर्ज, जलालपुर थाना कांड संख्या—112/2014 के संबंध में जांच सौंपी गई थी। पूर्व में उल्लिखित मामला अन्य व्यक्तियों के साथ सरकारी विद्यालय के प्रधानाध्यापक के खिलाफ दर्ज किया गया था। इस बीच, अभियुक्त (रजनी दुबे) के पति ने पुलिस अधीक्षक, सतर्कता ब्यूरो, पटना के समक्ष, उस न्यायालय को केस डायरी भेजे जाने हेतु जहाँ उसकी पत्नी की जमानत याचिका लम्बित थी, दिनांक-18.11.2014. को थाना गृह अधिकारी, जलालपुर द्वारा 30,000 रुपये मांगे जाने की एक लिखित शिकायत दर्ज की।

(ii) उक्त शिकायत के आधार पर, 19.11.2014 को सत्यापन किया गया था और उसके बाद, निगरानी जांच ब्यूरो, पटना द्वारा एक ट्रेप टीम का गठन किया गया था। दिनांक 21.11.2014. को छापा मारा गया और याचिकाकर्ता को 20,000 रुपये की रिश्त लेते हुए पकड़ा गया, जिससे निगरानी वाद संख्या-90/2014 स्थापित हुआ जिसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7/13 (2) जो धारा 13 (1) (डी) के साथ पठित है, के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दर्ज किया गया। प्राथमिकी की स्थापना के परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया और प्रपत्र-क को ज्ञापन संख्या 27 दिनांक 03.01.2015 के तहत गठन किया गया।

(iii) याचिकाकर्ता ने 16.01.2015 को न्यायिक हिरासत से रिहा होने पर 09.03.2015 को कारण बताओ आवेदन दाखिल किया, जिसमें उसे विभागीय जांच में गवाही देने वाले सभी गवाहों से जिरह करने की अनुमति देने का अनुरोध किया। याचिकाकर्ता ने 24.09.2018 को संचालन अधिकारी के समक्ष अपना कारण बताओ/बचाव कथन भी दाखिल किया; उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में आवश्यक दस्तावेज की मांग की गई। 19.12.2017 को पुलिस अधीक्षक द्वारा जारी ज्ञापन संख्या 5793 के तहत प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त किया गया। जांच में याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए सभी आरोप सिद्ध पाए गए और तदनुसार जांच पूरी

होने के बाद संचालन अधिकारी ने पुलिस अधीक्षक को ज्ञापन संख्या 578 दिनांक 27.09.2018 के तहत अपनी जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की। जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर, याचिकाकर्ता को सेवा से उसकी प्रस्तावित बर्खास्तगी के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस विधिवत दिया गया। इसके जवाब में, याचिकाकर्ता ने अपने बचाव में अपना विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें जांच के दौरान उठाए गए आधारों को दोहराया गया। अंत में, बर्खास्तगी का आरोपित आदेश ज्ञापन संख्या 3340 दिनांक 17.11.2018 के तहत पारित किया गया, जिसे क्रमशः ज्ञापन संख्या 4989 दिनांक 24.11.2018/ज्ञापन संख्या 2488 दिनांक 29.11.2018 के तहत परिणामी आदेश पारित करके याचिकाकर्ता को सूचित किया गया है।

(iv) यह भी बताना उचित होगा कि विभागीय कार्यवाही के दौरान याचिकाकर्ता ने सतर्कता मामले के निपटारे तक विभागीय जांच को स्थगित रखने के लिए सीडब्ल्यूजेसी संख्या 15117/2018 भी प्रस्तुत किया था। हालांकि, इस अंतराल अवधि में बर्खास्तगी का आदेश पारित होने के कारण रिट आवेदन निष्फल हो गया है।

(v) खारिज करने के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने सीडब्ल्यूजेसी संख्या 9534/2019 भी पेश की, जिसका निपटारा दिनांक 12.11.2020 के आदेश के तहत हुआ, जिसमें प्रतिवादी को वैधानिक अपील का निपटारा करने का निर्देश दिया गया, जो अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष लंबित पाई गई थी। इस न्यायालय के निर्देश के अनुसरण में, अपील पर विचार किया गया और अंततः दिनांक 16.02.2021 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित किए जाने पर, अपील को खारिज करने के परिणामी आदेश भी क्रमशः ज्ञापन संख्या 1498 दिनांक 13.03.2021 और ज्ञापन संख्या 595 दिनांक 23.03.2021 के माध्यम से प्रेषित किए गए।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश और अपीलीय प्राधिकरण द्वारा इसकी पुष्टि पर आघात करते हुए यह तर्क दिया है कि पुलिस अधीक्षक न तो अनुशासनात्मक प्राधिकरण था और न ही याचिकाकर्ता का नियुक्ती प्राधिकरण, जो उप निरीक्षक का पद धारण कर रहा था और इस तरह, पुलिस अधीक्षक, सारण द्वारा आरोप पत्र जारी करना और बर्खास्तगी की सिफारिश पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना है, जो बिहार सरकार के सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 2005 (इसके बाद 'सी. सी. ए. नियम, 2005' के रूप में संदर्भित)के नियम 16,17 (2) और 18 का गैर-अनुपालन है। वाद के तथ्यों को स्वीकार करते हुए, यह आगे तर्क दिया जाता है कि जिस तारीख को आरोप पत्र जारी किया गया था, याचिकाकर्ता न्यायिक हिरासत में था; आरोप पत्र के पूर्ण अवलोकन से जो 03.01.2015 को जारी किया गया था, यह स्पष्ट होगा कि विभाग के मामले का संचालन करने के लिए कोई प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया था। पहली बार, प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को इतने सारे गवाहों की जाँच के बाद बहुत देर से दिनांक 19.12.2017 को नियुक्त किया गया था। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की गैर-नियुक्ति पूरी तरह से सी. सी. ए. नियम, 2005 के नियम 17 (5) (सी) के साथ-साथ ज्ञापन संख्या - 235 दिनांक- 20.12.2017 के तहत पुलिस महानिरीक्षक के स्तर पर जारी परिणामी पत्र के तहत थी, जिसमें सभी पुलिस अधीक्षकों को वैधानिक निर्देशों का पालन करने का निर्देश दिया गया था। उपरोक्त तथ्यों का उल्लेख करते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने इस प्रकार तर्क दिया कि विभागीय कार्यवाही दूषित है क्योंकि यह संचालन अधिकारी है जिसने एक प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में कार्य किया है। शपथपत्र पर याचिकाकर्ता का यह विशिष्ट तर्क है कि उनकी ओर से समय-समय पर अनुरोध किए जाने के बावजूद, उन्हें जांच के दौरान गवाहों से पूछताछ करने का उचित अवसर प्रदान नहीं

किया गया था; इसलिए प्रस्तुत किया गया बर्खास्तगी का विवादित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के नियम का उल्लंघन है।

5. विभिन्न अनुच्छेदों का उल्लेख करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि विभागीय जांच के दौरान अपराधी को कोई नोटिस नहीं दिया गया है, जब अभियोजन पक्ष के गवाहों से जांच अधिकारी द्वारा पूछताछ की जानी थी, जो अधिसूचित होने के उपरांत प्रस्तुत तथ्यों का समर्थन भी करता है।

6. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता का तर्क का अगला बड़ा भाग विवादित आदेश की वैधता तक ही सीमित है क्योंकि कहा जाता है कि यह विभागीय जांच के दौरान जाल वाद की जब्ती सूची के स्वतंत्र गवाह द्वारा उसके समर्थन में दिए गए शपथपत्र के साथ ही साथ याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत बचाव पक्ष पर विचार किए बिना पारित किया गया था। जिन महत्वपूर्ण तथ्यों की अनदेखी जांच अधिकारी के साथ-साथ अनुशासनात्मक प्राधिकरण और अपीलीय प्राधिकरण द्वारा भी की गई थी, वे बड़े हैं क्योंकि शिकायत केवल जलालपुर थाने के प्रभारी अधिकारी मनीष कुमार के खिलाफ की गई थी, न कि शिकायतकर्ता से रिश्तत की मांग के संबंध में याचिकाकर्ता के खिलाफ। पूरा जाल वाद झूठा था और दुर्भावना से प्रेरित था और इस तरह के प्रस्तुतिकरण को साबित करने के लिए, रिट याचिका में किए गए कथनों का जिक्र करते हुए एक लंबा तर्क भी दिया गया है। उपरोक्त प्रस्तुतिकरण के साथ इसमें यह भी इंगित किया गया है कि निगरानी वाद में जाँच करने वाला व्यक्ति स्वयं एक भ्रष्ट अधिकारी था, जिसे अनुशासनात्मक कार्यवाही में काले निशान के साथ चिह्नित किया गया था और इस प्रकार इस तरह की जाँच करने के लिए वह भरोसेमंद उत्तरदायी अधिकारी नहीं था। याचिकाकर्ता द्वारा लिए गए आधारों पर न तो अनुशासनात्मक अधिकारी द्वारा विचार किया गया है और न ही अपीलीय प्राधिकरण द्वारा, इस बात पर

कोई चर्चा नहीं की गई है कि याचिकाकर्ता के बचाव बयान और इस तरह के बचाव के समर्थन में उठाए गए आधारों का पक्ष क्यों नहीं लिया गया।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार गिरि ने उपरोक्त सभी प्रस्तुतियों को पुष्ट करने के लिए शीर्ष न्यायालय द्वारा **कुमायु मंडल विकास निगम लिमिटेड बनाम गिरिजा शंकर [(2001) 1 एस. सी. सी. 182]** का वाद में दिए गए फैसले पर भरोसा व्यक्त किया, जिसमें न्यायालय ने जोर दिया कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उद्देश्य न्याय प्राप्त करना ही नहीं है, बल्कि न्याय की विफलता को रोकना है। माननीय न्यायालय ने कहा कि संचालन अधिकारी द्वारा प्रस्तुत 60 पृष्ठों की रिपोर्ट, जिसमें अपराधी के विरुद्ध आरोप प्रमाणित हुए हैं और अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पारित लंबा आदेश, बर्खास्तगी के आदेश को बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं पाया गया, जब जांच रिपोर्ट बिना किसी आधार के पाई गई और सुनवाई की तारीख तय करने का नोटिस और यह भी कि वह व्यक्ति कौन है, जिसने किसी भी प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति में इसे प्रस्तुत किया है।

8. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **उ० प्र० राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा [(2010) (2) एस. सी. सी. 772]** के वाद में दिए गए निर्णय पर भी भरोसा रखा गया है। इस न्यायालय को इस तय किए गए प्रस्ताव के साथ यह याद दिलाएं कि अर्ध न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला पूछताछ अधिकारी एक स्वतंत्र न्यायनिर्णायक के पद पर है और इस प्रकार उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। जाँच अधिकारी को अभियोजक के साथ-साथ न्यायाधीश के रूप में भी कार्य नहीं करना चाहिए।

9. **उपेंद्र पंडित बनाम बिहार राज्य और अन्य [2023 (4) पी. एल. जे. आर. 568]**, के वाद में इस न्यायालय की विद्वत खंड पीठ के निर्णय का उल्लेख करते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की

नियुक्ति न करना सी. सी. ए. नियम, 2005 के नियम 17 के प्रावधानों की एक स्पष्ट और गंभीर चूक है, जिससे बर्खास्तगी के आदेश के साथ-साथ अपील को खारिज करने के आदेश को भी रद्द किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *टी. सुब्रमण्यन बनाम तमिलनाडु राज्य [ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 836]* के एक निर्णय और आगे *बी. जयराम बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(2014) 13 एस. सी. सी. 55]* के वाद पर इस मुद्दे में भरोसा रखा गया है कि अवैध संतुष्टि के भुगतान के प्रमाण के अभाव में, केवल अभियुक्त से दागी मुद्रा नोटों की बरामदगी से अपराध की पुष्टि नहीं हुई। याचिकाकर्ता का यह तर्क है कि हालांकि निर्णय एक आपराधिक अपील में दिए गए हैं, लेकिन यह स्थिति कानून में तय की गई है कि अवैध संतुष्टि की मांग उक्त अपराध को स्थापित करने के लिए एक *अनिवार्य शर्त* है और केवल मुद्रा नोटों की बरामदगी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 के तहत अपराध नहीं हो सकती है, जब तक कि यह सभी उचित संदेहों से परे साबित नहीं हो जाता है कि आरोपी ने स्वेच्छा से पैसे को रिश्वत के रूप में स्वीकार कर लिया था। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि जिस व्यक्ति के खिलाफ रिश्वत की मांग की शिकायत की गई थी, उसे भी विभागीय कार्यवाही के लिए रखा गया था, लेकिन केवल एक काले निशान की सजा दी गई थी; जहां तक याचिकाकर्ता का संबंध है, उसे बर्खास्तगी की चरम सजा दी गई है।

10. तथ्यों को सार रूप में प्रस्तुत करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने *मो० गियाउलहक बनाम बिहार राज्य [2024 (1) बी. एल. जे. 94]* के वाद में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले का उल्लेख किया, इस प्रभाव से कि यदि कोई कार्रवाई, जो प्रस्तुतकर्ता अधिकारी द्वारा की जानी चाहिए, स्वयं जांच अधिकारी द्वारा की गई है और जांच कार्यवाही के परिणामस्वरूप सजा हुई है, टिकाऊ नहीं है और रद्द करने योग्य है।

11. याचिकाकर्ता,की ओर से की गई दलीलों को खारिज करने के लिये राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री मो. नदीम सेराज ने जोरदार तर्क प्रस्तुत किया है कि आरोप पत्र के साथ अनुशासनात्मक कार्यवाही की शुरुआत पुलिस महानिदेशक के निर्देश के अनुसार, पुलिस अधीक्षक, सारण को की गई थी और इस प्रकार याचिकाकर्ता की याचिका है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही और आरोप पत्र जारी करना पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना है और किसी भी परिस्थिति में इसकी पुष्टि नहीं होती है। विभागीय कार्यवाही के दौरान, याचिकाकर्ता को पर्याप्त अवसर प्रदान किया गया था, जिसने अपना विस्तृत विस्तृत जवाब/बचाव बयान के साथ-साथ अन्य सहायक दस्तावेजी साक्ष्य जैसे गवाहों के शपथपत्र के साथ अतिरिक्त स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत किया, जिन पर संचालन अधिकारी द्वारा विधिवत विचार किया जाता है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और साक्ष्यों पर उचित विचार करने के बाद, यह पाया जाता है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप साबित हुए।

12. यह निष्पक्ष रूप से तर्क दिया जाता है कि हालांकि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को विधिवत दिनांक 19.12.2017. को नियुक्त किया गया था, लेकिन उसके बाद गवाहों से पूछताछ की गई और याचिकाकर्ता को कार्यवाही में निर्धारित तिथि के बारे में विधिवत सूचित किया गया, लेकिन वह अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करने और साक्ष्यों के प्रतिपरीक्षण में विफल रहा। उपरोक्त विवाद को बल देने हेतु, के संबंध में रिकॉर्ड विभागीय कार्यवाही सं. 2/2015, इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है। आरोप पत्र की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करते हुए यह तर्क दिया जाता है कि याचिकाकर्ता को गवाहों और उन दस्तावेजों की सूची प्रदान की गई है जिनके आधार पर आरोप साबित करने का प्रस्ताव है। जाँच रिपोर्ट से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में ट्रेप टीम के सदस्य के साथ-साथ अन्य गवाहों का बयान दर्ज किया गया था, और उन्होंने स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता द्वारा 20,000/--रुपये की

रिश्त लेने के आरोप का समर्थन किया है। संचालन अधिकारी ने याचिकाकर्ता के लिखित बयान पर भी विचार किया। आरोप पत्र में बताए गए दस्तावेजों की सूची अपराधी को विधिवत प्रदान की गई थी; इसके अलावा जांच रिपोर्ट से पता चलता है कि अभिलेख पर उपलब्ध सभी तथ्यों पर विचार करने के बाद आरोप साबित हो जाते हैं। जांच रिपोर्ट के आधार पर, याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस विधिवत जारी किया गया था और उसका जवाब मिलने पर, पुलिस अधीक्षक ने उसकी जांच की और पुलिस उप महानिरीक्षक, सारण रेंज, छपरा को बर्खास्तगी की सजा देने की सिफारिश की। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच रिपोर्ट से संतुष्ट होने पर याचिकाकर्ता के कारण बताओ का जवाब सहित पूरे मामलों का विश्लेषण किया और बर्खास्तगी की सजा दी, जो आरोपों के अनुपात में है।

13. याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील में कोई भी योग्यता नहीं पाए जाने पर खारिज कर दिया गया। *राजस्थान राज्य और अन्य बनाम भूपेन्द्र सिंह [एस. सी. सी. 2024 ऑनलाइन एससी 1908]* के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भारी निर्भरता रखी गई है। सरकारी अधिवक्ता श्री मो. विद्वान नदीम सेराज ने उपरोक्त निर्णय के माध्यम से इस न्यायालय का ध्यान, स्थापित विधि के सिद्धांत की ओर आकर्षित किया है कि यदि जांच अन्यथा ठीक से आयोजित की जाती है, तो विभागीय प्राधिकरण, तथ्यों के एकमात्र न्यायाधीश हैं और यदि कुछ विधिक साक्ष्य हैं जिन पर उनके निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता कोई ऐसा मामला नहीं है जिसे संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट के लिए कार्यवाही में उच्च न्यायालय के समक्ष प्रचार करने की अनुमति दी जा सकती है। साक्ष्य की पर्याप्तता या पूर्णता एक बिंदु पर आधारित होती है और उक्त निष्कर्ष से तथ्य का निष्कर्ष निकाला जाना न्यायाधिकरण या अनुशासनात्मक प्राधिकरण, अनन्य अधिकार क्षेत्र के भीतर होता है। इस न्यायालय के समक्ष यह भी आग्रह किया गया है

कि यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकरण जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को स्वीकार करता है और उसके आधार पर सजा देने के लिए आगे बढ़ता है, तो किसी विस्तृत कारण की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा **[देखें: बोलोरम बोरदोलोई बनाम लखीमी गौलिया बैंक, (2021) 3 एस. सी. सी. 806]** में समझाया गया है।

14. इस न्यायालय ने संबंधित पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ताओं की ओर से आगे की गई दलीलों पर उत्सुकता से विचार किया है और इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत विभागीय कार्यवाही के संबंध में रिकॉर्ड सहित अभिलेखों पर उपलब्ध तथ्यों का भी अध्ययन किया है।

15. मामले के तथ्यों को सामने लाने से पहले उस विधिक स्थिति पर चर्चा करना उचित होगा जो इस न्यायालय के समक्ष उठाए गए विवाद के बिंदु को नियंत्रित करेगी। भ्रष्टाचार का आरोप बल्कि एक गंभीर आरोप है और यदि अनुशासनात्मक कार्यवाही में पाया जाता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी/प्रस्तुतकर्ता अधिकारी द्वारा व्यक्त की गई राय में गलत सहानुभूति पर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। **सचिव, रक्षा मंत्री और अन्य बनाम प्रभाष चंद्र मिर्धा [ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2250]** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया है कि आरोपित अपराध की प्रकृति भी एक प्रासंगिक पहलु है। उसी तर्ज पर, **ब्रजेंद्र सिंह याम्बेम बनाम भारत संघ और अन्य [(2016) 9 एस. सी. सी. 20]** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया है कि तकनीकी फ्लो फ्लॉप में ट्रैप मामलों में आरोप की गंभीरता एक प्रासंगिक कारक है जो इस तरह के कदाचार पर पारित आदेश को दरकिनार करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। उच्चतम न्यायालय ने प्रक्रियात्मक कमियों के तथ्य पर ध्यान देने के बाद अनुमति नहीं दी, जो केवल अनियमित पाए गए थे। यह मामूली बात है कि इस तरह के चरम आरोप के लिए कार्रवाई और सिद्धांतों पर कोई विवाद नहीं हो सकता है,

लेकिन फिर भी इस दिशा में राज्य द्वारा शुरू की गई कोई भी कार्रवाई निर्धारित वैधानिक प्रक्रियाओं का पालन करके विधिसम्मत होनी चाहिए। इस न्यायालय की एक पीठ ने *उदय प्रताप सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य* [2017 (4) पी. एल. जे. आर. 195] जबकि पूर्व में उल्लिखित अवलोकन करते हुए कहा गया है कि यह केवल सनक और कल्पना पर नहीं है कि अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा कोई राय केवल आरोप की गंभीरता पर बनाई जानी चाहिए, बल्कि आरोप पर कोई अंतिम राय व्यक्त करने से पहले, अनुशासनात्मक प्राधिकरण सेवा नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के लिए एक वैध दायित्व के तहत है।

16. देश के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभागीय जांच से निपटने में संविधान के अनुच्छेद 226 के दायरे पर असंख्य निर्णयों में विचार किया गया है। न्यायिक समीक्षा का दायरा निर्णय लेने की प्रक्रिया में कमी तक सीमित है न कि निर्णय तक। इस बात का ध्यान रखा गया है कि प्रशासक द्वारा की गई पसंद की गई शुद्धता के दायरे में न्यायालय नहीं प्रवेश करेगा और न्यायालय को अपने फैसले को प्रशासक के फैसले के स्थान पर नहीं लेना चाहिए। [सम्बंधित: *एसोसिएटेड प्रोविंशियल पिक्चर हाउस लिमिटेड बनाम वेइसबरी कॉर्प.*, (1948) 1 के बी 223: (1947) 2 सभी ईआर 680 (सीए)] *भारत संघ और अन्य बनाम पी. गुनासेकरन* [(2015) 2 एस. सी. सी. 610], के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 226 और 227 के तहत अधिकार का प्रयोग करते समय हस्तक्षेप के दायरे को संक्षेप में प्रस्तुत किया। प्रासंगिक पैराग्राफ को समाहित करना फायदेमंद होगा:

“12. अच्छी तरह से स्थिर स्थिति के बावजूद, यह दुखद रूप से परेशान करने वाला है कि उच्च न्यायालय ने अनुशासनात्मक कार्यवाही में एक अपीलीय प्राधिकरण के रूप में काम किया है, यहां तक कि जांच अधिकारी के समक्ष साक्ष्य की भी सराहना की है। आरोप (एक) पर निष्कर्ष को अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा स्वीकार

कर लिया गया था और केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा भी इसका समर्थन किया गया था। अनुशासनात्मक कार्यवाही में, उच्च न्यायालय पहली अपील के दूसरे न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है और न ही कर सकता है। उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए, साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने का साहस नहीं करेगा। उच्च न्यायालय केवल यह देख सकता है कि क्या:

- (क) जाँच एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा की जाती है;
- (ख) जाँच उस ओर से निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की जाती है;
- (ग) कार्यवाहियों के संचालन में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है;
- (घ) अधिकारियों ने मामले के साक्ष्य और गुण-दोष से परे कुछ विचारों से खुद को एक उचित निष्कर्ष पर पहुंचने से अक्षम कर लिया है;
- (ङ.) अधिकारियों ने खुद को अप्रासंगिक या बाहरी विचारों से प्रभावित होने की अनुमति दी है;
- (च) निष्कर्ष, इसके बावजूद, इतना पूरी तरह से मनमाना और मनमौजी है कि कोई भी उचित व्यक्ति कभी भी इस तरह के निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता था;
- (छ) अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वीकार्य और भौतिक साक्ष्य को स्वीकार करने में गलती से विफल रहा था;
- (ज) अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने गलती से अस्वीकार्य साक्ष्य को स्वीकार किया था जिसने निष्कर्ष को प्रभावित किया था;
- ((झ) तथ्य का निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है।

17. जहां तक तथ्यों का पुनर्मूल्यांकन करने के उच्च न्यायालय के अधिकार का संबंध है, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत पूरी तरह से अस्वीकार्य है। हालाँकि, एक न्यायाधिकरण के आदेश में सामान्य से अधिक दुर्बलता का स्तर होना चाहिए, जो उच्च न्यायालय के समक्ष न्यायिक जांच का सामना कर रहा है, हस्तक्षेप को सही ठहराने के लिए जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **भारती एयरटेल लिमिटेड बनाम ए. एस. राघवेंद्र**, [(2024) 6 एस. सी. सी 418]

के वाद में माना गया है। *आंध्र प्रदेश बनाम एस. श्री रामाराव [ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1723]* के वाद, के साथ-साथ *आंध्र प्रदेश राज्य बनाम चित्रा वेंकट राव [(1975) 2 एससीसी 557]* आंध्र प्रदेश के मामले में भी तय विधिक स्थिति को दोहराते हुए और *भारतीय स्टेट बैंक बनाम एस के शर्मा [(1996) 3 एससीसी 364]* सर्वोच्च न्यायालय ने *भूपेंद्र सिंह* (उपरोक्त) के वाद में न्यायालय ने यह भी कहा है कि एक ऐसे मामले में जहां की प्रक्रिया में मामूली कमियों के कारण अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए अपराधी को उचित अवसर दिया गया था। यदि इसने प्रतिवादियों के लिए उस हद तक पूर्वाग्रह पैदा नहीं किया है जो न्यायिक प्रतिबंध की गारंटी देता है और आरोप विधिक साक्ष्य के आधार पर साबित हुए हैं, तो बर्खास्तगी के आदेश को सामान्य रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

18. मामले के तथ्यों पर आते हुए, यह स्वीकृत स्थिति है कि शिकायत केवल जलालपुर पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी मनीष कुमार द्वारा रिश्त की मांग के आरोप तक ही सीमित थी, जिसके कारण याचिकाकर्ता को कथित रूप से 20,000 रुपये की रिश्त लेते हुए सत्यापित और गिरफ्तार किया गया, जिसके परिणामस्वरूप जलालपुर थाना कांड संख्या 112/2014 की दायर हुई। यह भी स्वीकृत स्थिति है कि आरोप का ज्ञापन 03.01.2015 को जारी किया गया था, जबकि याचिकाकर्ता न्यायिक हिरासत में था। रिहा होने पर याचिकाकर्ता ने आरोपों से इनकार करते हुए अनुलग्नक-4 श्रृंखला में निहित अभ्यावेदन दायर किए, जिसमें गवाहों की जिरह के लिए अनुरोध किया गया था, जिनके नाम गवाहों की सूची में बताए गए थे, जिनके द्वारा आरोप साबित किए जाने का प्रस्ताव था। याचिकाकर्ता ने उचित और विस्तृत लिखित बयान देने के लिए आवश्यक प्रासंगिक कागजात की आपूर्ति के लिए भी कहा। अनुशासनात्मक कार्यवाही में प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति 18.12.2017 को की गई थी, हालांकि, इस बीच, दो गवाहों अर्थात् अमरनाथ सिंह, पुलिस उपाधीक्षक और

महाराजा कनिष्क कुमार, पुलिस उपाधीक्षक, सतर्कता जांच ब्यूरो का परिक्षण संचालन अधिकारी द्वारा की गई थी।

19. न्यायालय ने कई बार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उद्देश्य से चेतावनी दी है, जिसके अनुसार कर्मचारियों के साथ किसी भी कार्यवाही में निष्पक्ष व्यवहार किया जाना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें सजा मिल सकती है। **सरोज कुमार सिन्हा** (उपरोक्त) के मामले में न्यायालय ने जांच अधिकारी की भूमिका और स्थिति के महत्व पर जोर देते हुए कहा कि सरकारी कर्मचारी के खिलाफ की गई विभागीय जांच को आकस्मिक अभ्यास नहीं माना जा सकता। जांच कार्यवाही भी बंद दिमाग से नहीं की जा सकती। जांच अधिकारी को पूरी तरह से निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन न केवल यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए कि न्याय हो, बल्कि यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि न्याय स्पष्ट रूप से हो रहा है। माननीय न्यायालय ने **शॉघनेसी बनाम यूनाइटेड स्टेट्स [345 यूएस 206 (1953) (जैक्सन जे)]** के मामले में दिए गए फैसलों पर भी जोर दिया है, यूनाइटेड स्टेट्स सुप्रीम कोर्ट के एक न्यायाधीश ने कहा है कि "प्रक्रियात्मक निष्पक्षता और नियमितता स्वतंत्रता का अपरिहार्य सार है। यदि उन्हें निष्पक्ष और निष्पक्ष रूप से लागू किया जाए तो कठोर मूल कानूनों को सहन किया जा सकता है।"

20. **सरोज कुमार सिन्हा** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ-28 को संक्षेप में प्रस्तुत करना उपयोगी होगा:

"28. अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्यरत एक जांच अधिकारी एक स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखना है कि क्या आरोपों को साबित करने के लिए अखंडित साक्ष्य पर्याप्त हैं। वर्तमान मामले में

उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज साबित नहीं हुए हैं, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए उन पर विचार नहीं किया जा सकता है कि प्रतिवादियों के खिलाफ आरोप साबित हुए हैं।”

21. यह भी विवाद का विषय नहीं है कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति ही नहीं की गई थी, बल्कि यह ऐसा मामला है जिसमें प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति तो हुई, लेकिन देरी से। ऐसी परिस्थितियों में भी न्यायालय यह देख सकता है कि 20. यह ध्यान देने योग्य होगा कि प्रतिवादी अधिकारियों ने सीसीए नियम, 2005 के नियम 17(5)(सी) के अंतर्गत निर्धारित विधिक नियम और विहित आवश्यक आवश्यकताओं का उल्लंघन किया है। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति के महत्व को प्रतिवादी ने भी स्वीकार किया है, जिसके कारण अनुलग्नक-7 में निहित ज्ञापन संख्या 235 दिनांक 20.12.2017 जारी किया गया। उपर्युक्त ज्ञापन में प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की भूमिका स्पष्ट रूप से निर्धारित की गई है, जो इस मामले के लिए प्रासंगिक होगी, जिसकी टाइप की गई प्रति इस आदेश में शामिल की गई है, इसके बाद:

ज्ञापांक 235/344106/एल.1

पुलिस महानिदेशक का कार्यालय, बिहार पटना ।

पटना, दिनांक 20/12/20

सेवा में,

सभी पुलिस अधीक्षक, बिहार ।

सभी पुलिस अधीक्षक (रेलवे सहित) बिहार ।

सभी समादेश, बिहार सैन्य पुलिस ।

विषय:- अनुशासनिक जाँच (विभागीय कार्यवाही) में प्रस्तुतिकरण पदाधिकारी की नियुक्ति ,एवं कार्य निष्पादन के संबंध में।

उपरोक्त विषय के संदर्भ में कहना है कि पुलिस पदाधिकारियों ,एवं कर्मियों के खिलाफ चलाए जा रहे विभागीय जाँच (विभागीय कार्यवाही) में प्रस्तुतिकरण पदाधिकारी की प्रतिनियुक्ति नहीं रहने के कारण माननीय उच्च न्यायालय, पटना द्वारा विधि पूर्वक अनुशासनिक जांच नहीं होने के कारण अपचारी को लाभ अथवा पुनः अनुशासनिक जांच हेतु निर्देशित किया जा रहा है।----- बिहार सरकारी सेवक वर्गीकरण नियमावली के नियम 17 (5) (ग) के अनुसार जांच प्राधिकार नियुक्त करने की दशा में अनुशासनिक प्राधिकार को आरोपों के समर्थन में मामला को प्रस्तुत करने के लिए किसी

सरकारी सेवक को आदेश द्वारा प्रस्तुतीकरण पदाधिकारी नियुक्त करना है। प्रस्तुतिकरण पदाधिकारी की नियुक्ति अनुशासनिक प्राधिकार द्वारा किया जाता है। विभागीय जांच में प्रस्तुतिकरण पदाधिकारी के निम्न कार्य हैं-

- प्राप्त आरोप-पत्र (प्रपत्र-क), अभियोग की विषय वस्तु, अभिलेखीय साक्ष्य ,एवं अपचारी के अभिकथन का अध्ययन करना ।
- अपचारी के खिलाफ अभिलेखीय साक्ष्यों को उपयुक्त रूप से जांच प्राधिकार के समक्ष उपस्थापित करना।
- अनुशासनिक प्राधिकार की ओर से साक्षियों का बयान जांच प्राधिकार के समक्ष करना।
- अपचारी द्वारा बचाव में प्रस्तुत साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करना ।
- अपचारी द्वारा प्रतिवाद में प्रस्तुत किए गए अभिलेखीय साक्ष्यों का अध्ययन कर उसकी त्रुटियों/असंगतियों को प्रस्तुत करना।
- जांच प्रक्रिया समाप्त होने पर अनुशासनिक प्राधिकार की ओर से मौखिक पक्ष को जांच प्राधिकार के समक्ष प्रस्तुत करना।
- अनुशासनिक प्राधिकार की ओर से लिखित रूप में जांच प्राधिकार के समक्ष विभागीय पक्ष को प्रस्तुत करना।
- प्रस्तुतिकरण पदाधिकारी का कार्य जांच प्राधिकार नहीं कर सकता है। ऐसा करने पर विभागीय जांच की कार्यवाही अवैध होती है।
- प्रस्तुतिकरण पदाधिकारी की अनुपस्थिति में की गई जांच की कार्यवाही निरस्त किया जाता है

निर्देश दिया जाता है कि पुलिस पदाधिकारियों ,एवं पुलिसकर्मियों के विरुद्ध प्रारंभ की गई विभागीय जांच प्रक्रिया में सर्वप्रथम प्रस्तुतीकरण पदाधिकारी की नियुक्ति करें और उनसे ऊपर अंकित कार्यों का निष्पादन कराएं जिससे प्रक्रियात्मक त्रुटियों से बचा जा सके।

पुलिस महानिरीक्षक (बजट, अपील ,एवं कल्याण)

बिहार, पटना

प्रतिलिपि:- सभी पुलिस महानिरीक्षक/सभी पुलिस उप-महानिरीक्षक, बिहार को सूचनार्थ ,एवं आवश्यक क्रियार्थ हेतु प्रेषित।

पुलिस महानिरीक्षक (बजट, अपील एवं कल्याण)

बिहार, पटना

22. प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के कर्तव्य पर ध्यान देने के पश्चात, अब संचालन अधिकारी द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट पर आते हैं, जिसकी प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक-9 के रूप में अंकित है; यह न्यायालय पाता है कि "कार्यवाही के संचालन में सहायता करने के लिए प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को भी प्रतिनियुक्त किया गया था" वाक्य को छोड़कर, इस बारे में कुछ भी नहीं है कि उसने क्या भूमिका निभाई थी।

संचालन अधिकारी की रिपोर्ट में विभाग की ओर से प्रस्तुत गवाहों के बयान और याचिकाकर्ता के बचाव में लिखित बयान का वर्णन किया गया है, लेकिन इस बात पर कोई विचार-विमर्श और चर्चा नहीं की गई है कि याचिकाकर्ता का बचाव स्वीकार करने योग्य क्यों नहीं है। गवाहों के बयान और लिखित बचाव बयान को दोहराना ही जांच अधिकारी को उसके महत्वपूर्ण कर्तव्य का निर्वहन करने से मुक्त करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता, जो एक स्वतंत्र अर्ध न्यायिक प्राधिकरण के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य है।

23. यह बात आम है कि न्याय नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन न्याय होते हुए स्पष्ट रूप से देखा जाना चाहिए। ऐसी जांच में, जिसमें बर्खास्तगी की कठोर सजा हो सकती है, अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता होती है; और यदि अपराधी अपनी अनुपस्थिति के कारण गवाहों की जिरह का लाभ नहीं उठा पाता है, यदि पाया जाता है कि उसकी अनुपस्थिति उचित आधार पर थी, तो ऐसी परिस्थितियों में, जांच अधिकारी को अपराधी द्वारा मांगी गई अगली तारीख पर जिरह का अवसर प्रदान करने में उदारता दिखानी चाहिए। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि आरोपों को साबित करने के लिए कोई कारण बताए बिना लंबी जांच रिपोर्ट कमजोर है और इसमें हस्तक्षेप किया जा सकता है। इसके अलावा, कारणों को आदेश का दिल और आत्मा माना गया है जो आदेश के निर्माता के दिमाग को अंतर्दृष्टि देता है और उसने सभी प्रासंगिक पहलुओं पर विचार किया और अप्रासंगिक पहलू को त्याग दिया। **मेसर्स क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम मसूद अहमद खान एवं अन्य के मामले [(2010) 9 एससीसी 496]** में माननीय न्यायालय ने कारणों को दर्ज करने के महत्व को संक्षेप में यह कहते हुए व्यक्त किया है कि अर्ध न्यायिक प्राधिकरण को अपने निष्कर्ष के समर्थन में कारणों को दर्ज करना चाहिए क्योंकि यह न्यायिक और अर्ध-न्यायिक या यहां तक

कि प्रशासनिक शक्ति के किसी भी संभावित मनमाने प्रयोग पर एक वैध प्रतिबंध लगाता है।

24. यह न्यायालय इस स्थापित सिद्धांत से अनभिज्ञ नहीं है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में आरोपों को संभाव्यता की प्रबलता के आधार पर सिद्ध किया जाता है, जबकि आपराधिक मामले में आरोपों को सभी उचित संदेहों से परे सिद्ध किया जाना चाहिए, लेकिन अवैध परितोषण की मांग के सबूत के अभाव में, अपीलकर्ता/आरोपी से दागी मुद्रा नोटों की बरामदगी मात्र से अपराध का होना स्थापित नहीं होता है, इसलिए इस मामले में, विभाग के लिए यह आवश्यक था कि वह संभाव्यता की प्रबलता के पैमाने पर भी यह साबित करे कि याचिकाकर्ता ने स्वेच्छा से यह जानते हुए भी कि यह रिश्तत है, धन स्वीकार किया।

25. यह भी उल्लेखनीय होगा कि जलालपुर के एसएचओ मनीष कुमार, जिनके खिलाफ 30,000 रुपये रिश्तत मांगने की शिकायत की गई थी, उन्हें सिर्फ एक काला निशान दिया गया था, जो चेतावनी के बराबर है।

26. उपरोक्त सभी बिंदुओं और स्थापित कानूनी प्रस्तावों के आधार पर की गई चर्चाओं के आधार पर, इस न्यायालय को रिट याचिका में तथ्य नज़र आता है। तदनुसार, मेमो संख्या 3340 दिनांक 17.11.2018 में निहित विवादित आदेश और साथ ही दिनांक 16.02.2021 के अपीलीय आदेश और सभी परिणामी आदेशों को एतद्वारा अपास्त किया जाता है।

27. रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

28. आरोपित आदेशों और उसके परिणामस्वरूप जारी किए गए आदेशों को अपास्त किए जाने के कारण, अब बकाया वेतन के हकदारी के संबंध में प्रश्न उठेगा। यह देखना पर्याप्त है कि गलत तरीके से बर्खास्तगी/सेवा समाप्ति के मामले में, सेवा की निरंतरता और बकाया वेतन के साथ बहाली सामान्य नियम है, बशर्ते कि बकाया वेतन

के मुद्दे पर निर्णय लेते समय, न्यायाधिकरण या न्यायालय सेवा की अवधि, नियोक्ता की वित्तीय स्थिति, कदाचार की प्रकृति (यदि सिद्ध पाया जाता है) और इसी तरह के अन्य कारकों सहित विभिन्न सामग्रियों को ध्यान में रख सकता है [देखें: *दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक और अन्य*, (2013) 10 एससीसी 324] न्याय के हित को पूरा करने के लिए, प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को सेवा से बाहर रहने की अवधि के लिए वेतन का आधा हिस्सा बढ़ाकर सेवा की निरंतरता के साथ बहाल करें।

29. लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का भी निपटारा किया जाता है।

(हरीश कुमार, न्यायमूर्ति)

अंजनी/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।